माँ कैकई का धर्म संकट - एक लघु कथा

(पौराणिक कथाओं पर आधारित)

कथाकार

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक

श्री राम कथा संस्था पर्थ

ऑस्ट्रेलिआ – ६०२५

माँ कैकई का धर्म संकट - एक लघु कथा

महाराजाधिराज चक्रवर्ती शिरोमणि सम्राट श्री दशरथ जी का दरबार लगा हुआ है। क्या अलौकिक प्रतिभा है उनके दरबार की! महामंत्री सुमंत सहित सभी मंत्रीगण अपने अपने स्थान पर विराजित हैं। राजकुमार श्री राम और श्री लक्ष्मण जी भी अपने अपने स्थानों पर प्रसन्नचित्त बैठे हुए हैं। दो स्थान रिक्त हैं - राजकुमार भरत एवं शत्रुघ्न जी के। वह दोनों अपनी ननसाल अपने नानाश्री महाराज सम्राट अश्वपति से मिलन हेतु कैकय देश पधारे हुए हैं। संगीत सम्राट अजयदेव देवताओं को भी मुग्ध करने वाली वाद्य धुन से सभी का हृदय हर्षित कर रहे हैं। अचानक सम्राट दशरथ अपने सिंहासन से उठकर खड़े हो जाते हैं। महाराज के खड़े होते ही संगीत सम्राट अजयदेव वादन बंद कर हस्त जोड़ खड़े हो जाते हैं। उनके साथ ही राजकुमार राम एवं लक्ष्मण समेत सभी मंत्री एवं दरबारी गण महाराज का अभिवादन करते हुए खड़े हो जाते हैं। सभी के हृदय में शंका उत्पन्न हो रही है - क्या हुआ अचानक महाराज को? इस तरह सभा संचालन मध्य महाराज पहले तो कभी इतनी गंभीरता से सभा सम्बोधन हेतु खड़े नहीं हुए! ऐसी क्या सूचना अथवा आदेश है कि महाराज स्वयं इस तरह सभा संचालन मध्य खड़े होकर सभा को सम्बोधित करना चाहते हैं? ऐसा तो तभी होता है जब या तो महाराज युद्ध की घोषणा करना चाहते हों अथवा अत्यंत थकानवस् विश्राम हेतु महल गमन करना चाहते हों। लेकिन महाराज के चेहरे से कोई थकान के चिह्न तो दृष्टिगोचर हो नहीं रहे? फिर युद्ध की घोषणा? ऐसा भी तो नहीं लगता। कौन परम शौर्यवान धरमधुरंधर अजेय चक्रवर्ती महाराज के साथ भिड़ने का दुःसाहस कर सकता है? सभी सीमाएं तो पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं।

कहीं से भी कोई ऐसा कष्टदायक समाचार नहीं मिला। क्या कोई गुप्त समाचार माँ कुर्तकी ने अरण्य वन से भेजा है जहां सुना है कि राक्षणगण बड़ा उत्पात मचा रहे हैं? सभी के हृदय धक हो रहें हैं। इतने में ही महाराज का कोमल वाणी में स्वर सुनायी देता है।

"मेरे प्रिय साथियों, आपने हर परिस्थिति, सुख-दुःख, युद्ध-शान्ति में मेरा साथ दिया है। आदरणीय गुरुदेव श्री वशिष्ठ जी महाराज के चरणों के आशीर्वाद एवं मार्ग प्रदर्शन से तथा आपके सहयोग से मैंने अपनी प्रजा ही नहीं अपितु देवताओं का भी सम्मान पाया है। स्वयं देवराज इंद्र मेरे देवलोक उपस्थिति पर मुझे अपने सिंहासन पर विराजित करते हैं। गुरुदेव श्री वशिष्ठ जी एवं शृंगी महाऋषी के आशीर्वाद से राम जैसा पुरुषोत्तम आज्ञाकारी, लक्ष्मण जैसा वीर, भरत जैसा संत एवं शत्रुघ्न जैसा धैर्यवान पुत्र पाया है। महाऋषी विश्वामित्र जी के आशीर्वाद से सर्वगुणसंपन्न चार पुत्रवधूएं पायी हैं। स्वयं लक्ष्मी स्वरूपा सीता ने मेरे गृह को पुत्रवधू रूप में प्रकाशित किया है। यह अवश्य ही मेरे किसी जीवन का पुण्य कर्म हैं कि मुझे मांडवी, उर्मिला एवं श्रुतकीर्ति जैसी पुत्रवधू प्राप्त हुई हैं। अब मैं बृद्धावस्था में कदम रख रहा हूँ। राज कार्य-काज में भी शिथिलता आ रही है। अगर आप सभी की सहमति हो तो मैं इसी समय राम को युवराज बनाने की घोषणा करना चाहता हूँ।"

महाराज के मुख से ये शब्द पूर्णतः निकल भी नहीं पाए थे कि दरबार में चहुँओर से साधुवाद साधुवाद के स्वर सुनायी देने लगे। दरबार तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। सभी के चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे।

जय मंगल भल काजु बिचारा, बेगिअ नाथ न लाइयु बारा।
नृपद मोहु सुनि सचिव सुभाषा, बढ़त बोड़ जनु लही सुसाखा।

राजकुमार श्री राम स्तब्ध! मेरा जन्म अवध का राज्य करने के लिए तो नहीं हुआ! चारों ओर धर्म का विनाश हो रहा है। ब्राह्मणों की आए दिन हत्याएं हो रहीं हैं। गौ माताओं का मांसभक्षण हेतु संहार किया जा रहा है। संतों के धर्मकर्म कार्य एवं यज्ञ संचालन में दुष्ट पुरुषों, दुष्ट नारियों एवं राक्षसों ने प्रतिरोध की सीमाएं पार कर रक्खी हैं। और यहां पिताश्री मेरे युवराज बनाने की घोषणा कर रहें हैं! ब्रह्मऋषि विश्वामित्र के शब्द उनके कानों में गूजने लगते हैं।

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही।

पिताश्री के आदेश की अवहेलना भी नहीं की जा सकती। पुरुषोत्तम राम का तो जन्म ही समाज के उत्थान के लिये एवं मार्ग दर्शना के लिए हुआ है। माता पिता की आज्ञा पालन तो उनके लिए ब्रह्मवाक्य है। क्या करना चाहिए कि महाराज अपना निर्णय बदल कर मुझे युवराज घोषित करने से पूर्व राज्य की स्थिति से अवगत होने का अवसर दें? क्या ही अच्छा होता कि महाराज इस घोषणा से पूर्व एक क्षण मुझसे विचार विमर्श कर लेते! लेकिन अब इस तरह सोचने से क्या लाभ? तरकश से निकला तीर एवं मुख से निकले शब्द वापस नहीं लिए जा सकते। महाराज के आदेश की किसी भी प्रकार अवहेलना नहीं की जा सकती।

श्री राम ने श्री लक्ष्मण की ओर देखा। आंखों के संकेत से तुरंत सभा से बाहर आने का आदेश दिया। सभी दरबारी गण हर्ष एवं उल्लास में इतने संलग्न थे कि किसी ने भी श्री राम और लक्ष्मण को सभा से जाते नहीं देखा।

श्री राम ने लक्ष्मण सहित गुप्त मार्ग से अपने महल में प्रवेश किया। महल पहुँच दोनों भाईओं में गुप्त मंत्रणा और विचार विमर्श होने लगा। कैसे संभव है पिताश्री को आदेश वापस लेने के लिए विवश होना? कुछ सूझ नहीं रहा था कि अचानक श्री राम के चेहरे पर प्रसन्नता की झलक दिखाई पडी। उनका चेहरा मुस्कासित हो गया। श्री लक्ष्मण जी कुछ समझने का प्रयास कर ही रहे थे कि इतने गंभीर हुए श्री राम अचानक इतने प्रफुल्लित कैसे हो गए, तभी श्री राम ने लक्ष्मण का हस्त पकड़ा और बोले, "भाई बस एक ही विकल्प है - माँ कैकई। माँ कैकई ही सम्राट के आदेश को परिवर्तित कराने की क्षमता रखती हैं।" लक्ष्मण विस्मित! लेकिन माँ कैकई ऐसा करेंगी क्यों? माँ कैकई के लिए तो श्री राम अपने स्वयं के गर्भ पुत्र भरत से भी अधिक प्रिय हैं। भरत भाई माँ कैकई के गर्भजाए पुत्र अवश्य हैं लेकिन स्वयं माँ कैकई ने तो श्री राम को अपने दुग्धपान से पालन किया है।

राम और भरत - दोनों भाई हम शक्ल हैं - जुड़वां भाइयों की तरह। इतने हम शक्ल कि माताएं भी उन्हें पहचान नहीं पातीं। अकसर ऐसा होता है कि जब बच्चे राम और भरत दुग्ध पान के लिए रुदन करते हैं तो माँ कौशल्या भरत को और माँ कैकई राम को दुग्धपान कराने लगतीं हैं। इतनी समानता के कारण उनके पहचानने में कष्ट का विवरण एक बार माताओं ने गुरुदेव वशिष्ठ जी से किया। गुरु देव बोले," सम्राज्ञी, अत्यंत सरल है ये। बस जब भी तुम्हें यह जानने की इक्षा हो कि कौन राम कौन भरत तो बस उनकी दृष्टि की ओर देखो। जिसकी दृष्टि दूसरे भाई के पद पर केंद्रित हो, वह भरत एवं जिस की दृष्टि दूसरे भाई के मस्तिष्क पर केंद्रित हो वह राम। राम सदैव भरत को आशीर्वाद देते रहते हैं, और भरत अपने आराध्य के चरणों में ध्यान लगाए उनका आशीर्वाद लेते रहते हैं। ऐसी प्रेम एवं श्रद्धा की भावना थी दोनों भाईओं में। अब यह जानने के पश्चात भी कि कौन राम और कौन भरत, दोनों माताओं का स्नेह क्रमशः राम और भरत पर इतना बढ़ चुका था कि कौशल्या माँ भरत को और कैकई माँ राम को अपने स्वयं के गर्भ पुत्र से अधिक प्रेम करने लगी थी।

श्री राम और लक्ष्मण जी में गुप्त मंत्रणा होने लगती है। विचार विमर्श पश्चात दोनों बिना अधिक समय खोये तुरंत माँ कैकई के भवन में गुप्त द्वार से प्रवेश करते हैं। मंथरा ने माँ कैकई को तब तक राज सभा में हुई महाराज दशरथ जी की श्री राम को युवराज पद पर आसीन करने की घोषणा से अवगत करा दिया था। दोनों - मंथरा एवं माँ कैकई इस सूचना से प्रसन्नता से झूम रहे थे। माँ ने कुलदेवी की आराधना की और मंथरा को पूरे महल को दीप मालाओं से प्रज्वलित करने का आदेश दिया।

इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते॥
(वाल्मीकि रामायण २।७)

“मन्थरे ! तूने मुझको यह बडा ही प्रिय संवाद सुनाया है, इसके बदले मैं तेरा और क्या उपकार करूं?”

मंथरा आज्ञा पालन हेतु जाने ही वाली थीं कि गुप्त मार्ग से श्री राम एवं लक्ष्मण को आते देख स्तब्ध रह गयीं। दोनों के चेहरे पर प्रसन्नता तो दूर कोई संतुष्टि के चिन्ह भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। माँ का हृदय पुत्र की यह अवस्था देखकर विचलित हो गया। तुरंत दौड़ कर हृदय से लगाया। "पुत्र राम तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए। महाराज ने तुम्हें युवराज पद पर आसीन करके की घोषणा की है। मैं जानती हूँ पूरा अवध इस आदेश से प्रसन्न चित हो झूम रहा है। सभी भाई इस समाचार से झूम झूम नाचेंगे, विशेषकर भरत। तुम तो जानते ही हो कि भरत का अनुराग तुम्हारे चरणों पर कितना है। ऐसे में यह व्याकुलता क्यों पुत्र?"

"माँ सर्व ज्ञाता और गहन ज्ञानी हो कर भी मेरे युवराज पद पर सिंहासीन होने से आप प्रसन्न कैसे हो सकती हैं? आप एक क्षत्राणी और राजमाता हैं। क्षत्राणी राजमाता का तो बस एक ही धर्म होता है - धर्म और सत्य की रक्षा करना। एक धर्मपत्नी के कर्तव्य का पालन करते हुए पति को धर्म एवं सत्य के मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित करना। एक धर्माणी माँ का कर्तव्य निभाते हुए अपने पुत्र को जन कल्याण हेतु कार्य करने का आदेश देना। और एक राजमाता के कर्तव्य को निभाते हुए अपना जीवन प्रजा के कल्याण के लिए समर्पित कर देना। इस घोषणा से न तो आप के पति का सत्यव्रत पालन होगा, ना ही आपके इस पुत्र को जन कल्याण हेतु जन्म लक्ष्य की प्राप्ति होगी और ना ही आप की प्रजा का किसी भी प्रकार से हित होगा। मेरे पिताश्री महाराज दशरथ जी इस आयु में भी भोग विलास के जीवन में लिप्त हैं। देश की सीमाओं पर क्या हो रहा है, इस को जानने का प्रयास भी नहीं करना चाहते। आप भली भांति जानती हैं माँ कि अगर अंत समय में इसी प्रकार उनकी आस्था कंचन, कन्या और भोग विलास में रही तो सर्व गुण संपन्न एवं चक्रवर्ती सम्राट होने के पश्चात भी वह नरक भोगी होंगे। इस आयु में भी आपके प्रति उनका अनुराग उन्हें ब्रह्मलोक में आवास

नहीं दिला पायेगा। आप ज्ञानी हैं माँ। जानती हैं कि अंत समय में जहाँ ध्यान रहता है उसी अवस्था में द्वितीय जन्म में प्रवेश होता है। मेरे पिता को ब्रह्मलोक का मार्ग दर्शित करो माँ। मेरे पिता को अपनी कामास्था से मुक्त करो माँ, यह मैं आपके चरण पकड़ कर आपसे विनम्र निवेदन करता हूँ।"

"फिर मेरा जन्म तो माँ अवध के सिंहासन के हेतु नहीं हुआ। चारों ओर असुरों ने अत्याचार का डंका पीट रक्खा है। जहाँ जहाँ धर्मावलम्बी निवास करते हैं वहां वहां राक्षसगण उन्हें मृत्यु का ग्रास बना रहे हैं। धर्म को नष्ट कर रहे हैं। मेरा प्रथम कार्य तो धर्म की रक्षा करना हैं।"

जब जब होइ धरम की हानी, बाढहिं असुर अधम अभिमानी।
करहिं अनीति जाहि नहीं बरनी, सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।
तब तब प्रभु धरहिं बिबिध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।

"मुझे जीवन लक्ष्य प्राप्ति हेतु वन जाकर इन दुष्ट राक्षसों का निर्वाण करना है। मेरे युवराज बनने पर मैं राज धर्म से बंध जाऊंगा माँ। मेरे व्यक्तिगत अहित न होने तक मैं इन दुष्टों पर बाण चलाने के लिए असमर्थ हूँगा। और ये स्वार्थी इस को भली भांति जानते हुए मेरा व्यक्तिगत अहित करेंगे नहीं, तब मैं साधु संतों की इनसे कैसे रक्षा कर पाऊँगा माँ? और अगर इन दुष्टों का निर्वाण नहीं हुआ तो मैं प्रजा को सुख और शांति कैसे दे पाऊंगा? प्रजा त्राहि त्राहि करती हुई बड़ी आशा से मेरा मुखावरण कर रही है माँ। मेरे रूप मैं उन्हें इन राक्षसों का काल दृष्टिगोचर हो रहा है माँ। मैंने अगर इनकी आशाओं का सम्मान नहीं किया तो उन्हें सुख कैसे प्राप्त होगा। और प्रजा को सुख नहीं तो माँ एक राजमाता के रूप में आपके धर्म का पालन कैसे होगा?"

"समय आ गया है माँ कि आप क्षत्राणी और राजमाता का धर्म निभाते हुए मेरे पिताश्री को अपनी कामास्था से मुक्त कर सत्य का दर्पण दिखाएँ।

उनके ब्रह्मलोक का मार्ग प्रशस्त करें। मुझे आदेश दें कि मैं वन भ्रमण करते हुए इन राक्षसों का निर्वाण करूँ।"

माँ कैकई बड़ी गंभीरता से अपने पुत्र राम की यह विवेचना सुन रहीं थीं।

"कैसे पुत्र? मैं यह कार्य कैसे कर सकती हूँ? महाराज का आदेश हो चुका है और तुम तो जानते ही हो कि महाराज अपने प्राण त्याग देंगे पर वचन वापस नहीं लेंगे।"

रघुपति रीति सदा चल आयी, प्राण जाएँ पर वचन ना जाई।

"मेरे लिए यह किस प्रकार संभव है? मैं अपना धर्म जानती हूँ पुत्र। धर्म निर्वाह के लिए मुझे अपने प्राण भी त्यागने पड़ें तो मैं सहर्ष त्याग दूंगी। पुत्र, महाराज को किसी प्रकार मैंने अपने प्रेम और कामास्था से निवृत्त कर भी दिया तो तुम्हारा वन जाना कैसे संभव हो सकता है? तुम महाराज को ही नहीं अपितु मुझे भी अपने प्राणों से अधिक प्रिय हो। मैं तुम्हारा विरह कैसे सहन कर सकती हूँ? फिर भरत - वह तो इस समाचार से अपने प्राण ही त्याग देगा। मुझे तो कोई मार्ग नहीं सूझता। तुम्ही उचित सिखावन दो पुत्र", माँ कैकई बोलीं।

"माँ इतिहास साक्षी है धर्म और सत्य की रक्षा के लिए सूर्यवंशी अवध राजपरिवार के सदस्यों ने बड़े बड़े बलिदान दिए हैं। इसी राज परिवार के चक्रवर्ती सम्राट हरिश्चंद्र ने धर्म और सत्य की रक्षा के लिए साम्राज्य तो क्या अपनी प्रिय धर्मपत्नी और प्रिय पुत्र तक का त्याग कर दिया था। क्या सम्राट हरिश्चंद्र को सम्राज्ञी तारा एवं पुत्र रोहित से प्रेम नहीं था? वह तो इनको अपने प्राणों से भी अधिक प्रेम करते थे। साम्राज्य त्याग एक डोम के प्रतिनिधि के रूप में शमशान घाट पर निवास किया। अपने इकलौते पुत्र के मरण पर भी विचलित नहीं हुए। सम्राज्ञी तारा ने कितने कष्ट सहे। स्वयं

अपने पुत्र के शव को लेकर दाह के लिए कर रूप में डोम के प्रतिनिधि को अपनी साड़ी का आधा भाग तक देने को तत्पर हो गयीं। माँ गर्व है कि ऐसे राज परिवार से मेरा और आपका सम्बन्ध है। आप सम्राज्ञीओं का तो अपने पति, परिवार एवं प्रजा के लिए जीवन का बलिदान तक करना आपके रक्त में है। माँ मैं आपको वचन देता हूँ कि इस त्याग से आपके पति, पुत्र एवं प्रजा, सभी का हित ही होगा। पति ब्रह्मलोक वासी होंगे, पुत्र को जन्म हेतु लक्ष्य की प्राप्ति होगी और प्रजा को सुख एवं शांति प्रदान होगी।"

"लेकिन पुत्र किस प्रकार?" माँ कैकई कांपते स्वर में बोलीं।

"याद करो माँ, एक समय देव-दानवों के युद्ध में पिताश्री और आप देवताओं की ओर से युद्ध में सम्मिलित हुए थे। दुष्ट दानव ने जब पिताश्री के सारथी की हत्या कर रथ के पहिये की धुरी काटने का प्रयास किया था तो आपने सारिथव्य का भार सम्हालते हुए अपने हस्त से रथ की धुरी को असंतुलित होने से बचाया था जिससे पिताश्री के प्राणों की रक्षा हुई और उन्हें विजयश्री की प्राप्ति हुई। आपके हस्त से रक्त की धारा बहते देख जब पिताश्री ने कारण जाना, तो उन्होंने आपके प्रति कृतज्ञता दर्शाते हुए आपको दो वरदान देने की घोषणा की थी। उस समय से अब तक तो आपने पिताश्री से कुछ नहीं माँगा। वह दोनों वरदान आपके पास आज भी सुरक्षित धरोहर के रूप में विद्यमान हैं। माँ, समय आ गया है कि अब आप उन वरदानों का उपयोग करें। एक वरदान में भरत को राज्य और दूसरे वरदान में मेरा १४ वर्ष का वनवास मांग लें। यह तो संसार को दिखाने के लिए ही होगा माँ। मैं १४ वर्ष बाद दुष्टों का संहार कर एवं शांति स्थापित कर अवश्य वापस लौटूंगा और शेष जीवन आपका आज्ञाकारी पुत्र बन व्यतीत करूंगा। भरत को मैं और आप भली प्रकार जानते हैं माँ। प्रारम्भ में उन्हें दुःख अवश्य होगा परन्तु गुरुदेव वशिष्ठ जी की कृपा से उन्हें इस कार्य में जन कल्याण की अनुभूति होगी और वह अपने आपको तुरंत ही सम्हाल लेंगे। पिताश्री को अवश्य ही धक्का लगेगा। वह आपसे विमुख हो जाएंगे और ब्रह्मलोक के

अधिकारी होंगे। माँ मैं बार बार आपके चरणों को पकड़ आपसे इस त्याग की भिक्षा मांगता हूँ। मुझे निराश न करें माँ।"

माँ कैकई को काटो तो खून नहीं। अपने प्रियतम पति को अपने से विमुख होने का दुःख, अपने सर्व प्रिय पुत्र राम से १४ वर्ष तक विरह का दुःख, इस त्याग से तो कहीं उनके प्राण ही न निकल जाएँ। कहीं इस धक्के से महाराज अपना शरीर न छोड़ दें। अपने विधवापन के एहसास मात्र से वह सिहर गयीं। "नहीं नहीं पुत्र राम, मैं यह नहीं कर सकती। मैं पति और पुत्र दोनों को ही खोने का दुःसाहस नहीं कर सकती।"

"किसको खोना और किसको पाना माँ? आप ज्ञानवान होकर ऐसी बातें करती हैं! एक न एक दिन तो पिताश्री को, आपको, मुझे, सभी को छोड़कर जाना हे है माँ। मृत्यु अगर आये तो जन कल्याण के लिए। इसी में तो सुख है माँ। अगर इस मृत्यु से पिताश्री को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है तो कैसा दुःख माँ? जीवन पर्यंत राज्य के सुख के साथ संसार का भोग किया। मृत्यु पर भगवद् प्राप्ति हो, ऐसा किस के लिए लाभदायक नहीं हैं माँ? रही मेरे बात। मैं तो कहीं नहीं जा रहा माँ। बस थोड़े समय के लिए अपने अवतार हेतु लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वन में जा रहा हूँ। साहस करो माँ।"

पुत्र, तुम्हारे वनवास का हेतु तो समझ आता है लेकिन भरत को सिंहासन, यह बात तो मेरी समझ से कतई बाहर है। तुम भली प्रकार जानते हो कि भरत कभी यह सिंहासन स्वीकार नहीं करेगा। जानते हुए उस को इतने बड़े धर्म संकट में क्यों डाल रहे हो?"

"माँ, भरत सिंहासन स्वीकार करें अथवा नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है महाराज दशरथ की प्रतिष्ठा और उनके वचन पालन का। याद करो माँ, आपके विवाह सम्राट दशरथ के साथ की शर्त, जिसमें आपके पिताश्री सम्राट अश्वदेव ने आपके ही गर्भ पुत्र को अवध का सिंहासन देने

का महाराज दशरथ से वचन लिया था, और महाराज ने उन्हें यह वचन दिया भी था। महाराज तो राम पुत्र मोह में यह वचन भूल गए, लेकिन बिना वचन पूर्ण किये अगर महाराज दशरथ देवलोक पधार गए तो उनका कितना अपयश होगा। इस सूर्यवंश के प्रतिनिधि महाराज को वचन भंग का श्राप भी लगेगा। इस कलंक के साथ उनका देवलोक जाना समस्त राज परिवार के लिए उपयुक्त नहीं है माँ।"

"बड़े धर्म संकट में डाल दिया तुमने पुत्र। एक ओर सभी वर्तमान सांसारिक सुख, और दूसरी ओर तुम्हारे वचनों के पालन में निकट भविष्य में दुःख ही दुःख। लेकिन पति को ब्रह्मलोक एवं मोक्ष प्राप्ति का ऐश्वर्य सुख, तुम जैसे पुत्र के जन्म लक्ष्य प्राप्त होने की संतुष्टि, एवं प्रजा के सुख-शांति की अनुभूति, यह सभी मुझे तुम्हारे वचनों को पालन करने की प्रेरणा दे रहें हैं। हे भगवान मैं क्या करूँ?"

माँ कैकई अपने को संतुलित करने का प्रयास करती हैं। मैं क्षत्राणी हूँ। राजमाता हूँ। अवध की सम्राज्ञी हूँ। अपने धर्म से कदापि विचलित नहीं हो सकती।

"पुत्र राम मैं तुम्हें वचन देती हूँ कि अपयश स्वीकार कर भी मैं तुम्हारे वचनों को कार्यान्वित करूंगी। हम चारों - तुम, पुत्र लक्ष्मण, मैं और मंथरा, इन चारों के अतिरिक्त इस भेद को कोई नहीं जान पायेगा। यहां तक कि पुत्र भरत भी नहीं।"

इस प्रकार माँ कैकई के आश्वासन पूर्ण शब्दों को सुनकर श्री राम गुप्त मार्ग से ही लक्ष्मण सहित वापस अपने महल को वापस आ जाते हैं।

माँ कैकई और मंथरा में गुप्त मंत्रणा होने लगती है। मंथरा कैकई की दासी नहीं, अपितु माँ सामान हैं। मंथरा ने ही तो कैकई का बचपन से लेकर आज तक लालन पालन किया है। कैकई के हर दुःख सुख में वह

उनके साथ ही रहीं हैं। यहाँ तक कि कैकई के विवाह पश्चात उन्होंने कैकय देश छोड़ अपनी धर्मपुत्री कैकई के साथ अवध आना स्वीकार किया। अपनी धर्म पुत्री का इतना अपयश हो सकता है, यह वह कैसे स्वीकार कर सकतीं हैं। हाथ जोड़कर कैकई से बोलीं, प्रिय पुत्री कैकई , पुत्र राम की योजना अवश्य ही कार्यान्वित होगी, परन्तु इसका पूर्ण अपयश मेरे पर होगा न कि तुम्हारे पर। संसार यही समझेगा कि भोली भाली कैकई को मंथरा ने अपने स्वार्थपूर्ती हेतु बहका दिया और ऐसे कठोर वचन महाराज से मांगने के लिए बाधित कर दिया।

मन्थरा, अर्थात मन से स्थिर, महाराज मन्थराचल पर्वत की पुत्री, अत्यंत विदुषी, माँ सरस्वती की आराधक, माँ कैकई की भगवत्मा, दुन्दभी नामक गन्धर्व कन्यावतार, अब वृद्धावस्था के चौथे चरण में प्रवेश कर रहीं थीं। वृद्धावस्था ने उनके शरीर को अत्यंत दुर्बल और कुबड़ी रूप में परिवर्तित कर दिया था। मन से भगवान् राम के काज के लिए प्रतिबद्ध निःस्वार्थ कोई भी कार्य करने में तत्पर वह तुरंत भगवान् पुरुषोत्तम राम के निर्देश को पालन करने में तत्पर हो गयीं। माँ सरस्वती की आराधना की और उनसे आशीर्वाद लेकर नाट्य क्रिया में संलग्न हो गयीं।

दुन्दभी (मंथरा पूर्वजन्म) को अपनी बुद्धिमता एवं सुंदरता पर बहुत अभिमान था। एक बार महिषी मतंग जी से साक्षात्कार हुया। महिषी मतंग के तेज, बुद्धिमता एवं सौन्दर्य से इतनी प्रभावित हुई कि बस मन में ठान लिया, अगर विवाह करेंगी तो केवल महिषी मतंग से।

मतंग ऋषी के आश्रम ऋष्यमूक पर्वत पर अपना निवास बना लिया और ऋषी को आकर्षित करने के लिए ब्रह्ममुहूर्त में जब ऋषि स्नान हेतु नदी में आते थे, तब अर्ध नग्न अवस्था में एक दिन नदी में नहाने का नाट्य करने लगीं। ऋषि का तो यह प्रभु ध्यानावस्था का समय था। एक नारी को इस प्रकार वासना से उनको लुभाते हुए देख उनके हृदय में क्रोध जाग्रत हुआ और दुन्दभी को श्राप दे दिया। "तेरा कृत्य केवल दासियों समक्ष है। अवश्य

ही दासी बन कर जीवन जीने का कष्ट उठा ।" श्राप से घबरा कर उसने ऋषि के चरण पकड़ लिए। अत्यंत क्षमा याचना की और श्राप से मुक्ति की प्रार्थना की। ऋषि का हृदय पिघल गया। 'हे गन्धर्व पुत्री, श्राप तो व्यर्थ नहीं जा सकता, लेकिन ये श्राप ही तेरे लिए वरदान बनेगा। त्रेता युग में स्वयं भगवान् विष्णु जब मनुज शरीर धारण कर अयोध्या में महाराज दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म लेंगे, तब तू उनका लालन पालन करेगी और उनके कार्य के लिए अपना जीवन न्योछावर करेगी। तुझे स्वयं ब्रह्म द्वारा मुक्ति प्रदान होगी।'

कालांतर में दुंदभी ने शरीर त्याग कर महाराज मन्थराचल के गृह अवतार लिया और नाम रक्खा गया मंथरा, मन को स्थिर रखने वाली कन्या। मंथरा जन्म से ही अत्यंत कुशाग्र बुद्धिवान, अत्यंत रूपवान और माँ सरस्वती की आराधक थीं। जब पांच वर्ष की हुई तो ब्रह्मऋषि नारद जी का मन्थराचल गृह आगमन हुया। कन्या को देखते ही उन्हें उसके जन्महेतु का ज्ञान हो गया। कन्या को उसके पूर्व जन्म का इतिहास बताया। नारद मुनि अपने साथ इस कन्या को महिषी भरद्वाज जी के आश्रम में प्रयाग ले आये । यहीं इसने हर प्रकार की शिक्षा, जिसमें युद्ध निपुणता, सारथी निपुणता आदि भी सम्मिलित थीं, का ज्ञान प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्त होने पर नारद जी ने उसे कैकय देश जाने का आदेश दिया। उसे समझाया की कैकेय नरेश के यहां एक पुत्री का जन्म होगा जिसका नाम कैकई होगा और वह ब्रह्म के अवतार श्री राम की भगवदमां बनेंगी। उन्हीं कैकई के लालन पालन का भार तुझे उठाना होगा। माँ कैकई के साथ तुझे राम काज करने का अवसर मिलेगा जो तुझे मोक्षदायी होगा।

ब्रह्मऋषि नारद जी के वचनों को गुरु आदेश मानकर मंथरा कैकय नरेश अश्वपति के महल में आ गयीं। महाराज अश्वपति इनकी विलक्षण बुद्धि से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मंथरा को अपने महल की विशेष सलाहकार के रूप में नियुक्त किया और महल में निवास दिया। समय होते महाराज अश्वपति की महारानी सुभलक्षणा ने अत्यंत शौर्यवान, सुन्दर और विदुषी

कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम रक्खा गया - कैकई , कैकय साम्राज्य की पुत्री । अभाग्यवश कन्या के जन्म के कुछ समय पश्चात ही माँ शुभलक्षणा का देहांत हो गया । यहां प्रारम्भ हुया मंथरा का प्रथम जीवन लक्ष्य । महाराज अश्वपति ने इन्हें कन्या कैकई के लालन पालन का भार सौंप दिया । मंथरा ने कन्या कैकई का लालन पालन अपनी पुत्री समान किया और उन्हें गृहस्थ जीवन से लेकर युद्ध कला तक की सभी शिक्षा दी।

महाराजा दशरथ कैकई के पिता अश्वपति के निमंत्रण पर एक समय कैकय देश पधारे । तब तक राजकुमारी कैकई वयस्क अवस्था में कदम रख चुकी थीं । पिता महाराज अश्वपति ने राजकुमारी कैकई को अनेक सभासदों के साथ राजद्वार पर महाराज दशरथ की अगवानी के लिए आमंत्रित किया । मंथरा ने राजकुमारी कैकई को इक्ष्वाकु वंश के महान राजाओं, उनके पराक्रम, ओज, दानवीरता और सत्यनेम की कथाएं सुना रक्खी थीं । राजकुमारी कैकई इन कथाओं से बहुत प्रभावित थी । मंथरा ने उन्हें बता रक्खा था कि इसी वंश के राजा हरिश्चंद्र ने सत्य की राह पर अपना राज्य, सुख, भार्या और पुत्र को तृण की तरह त्याग दिया था । राजा शिवि ने शरणागत कबूतर को बचाने के लिए एक बाज को अपने शरीर का मांस काटकर दे दिया था । इसी वंश के राजा अलर्क ने एक याचक को अपनी आंखें उपहार में दे दी थीं । राजा दशरथ जब अपने सेवकों के साथ राजद्वार पहुंचे तो चहुंओर कोलाहल मच गया । सभी उनकी एक झलक पाने को आतुर थे । वे जब रथ से उतरे तो उन्हें देखकर राजकुमारी कैकई उनपर मुग्ध हो गयीं । राजा दशरथ रूप, शौर्य और दर्प की त्रिवेणी थे । रथ से उतरते समय वे ऐसे दृष्टिगत हो रहे थे मानो साक्षात सूर्य पूर्व दिशा से निकल रहा हो । पिता सहित राजकुमारी कैकई ने आगे बढ़कर उनका सम्मान किया तथा उन्हें राजद्वार तक लेकर आए । विप्र समुदाय ने मांगलिक वचन सुनाकर उनका अभिनंदन किया । यहीं पिता अश्वपति ने राजद्वार पर राजकुमारी कैकई का महाराज दशरथ से परिचय करवाया ।

अतिथि-कक्ष में राजा दशरथ के स्वागत की जिम्मेदारी राज कुमारी कैकई को सौंपी गई। अर्घ्य, पाद्य, स्वागत संभाषण और अल्पाहार के बाद उनके कैकय प्रवास तक राजकुमारी कैकई उनके समीप ही रही। राजकुमारी कैकई ने पूरे मनोयोग से उनकी सेवा की और उनकी हर सुविधा का ध्यान रखा। राजकुमारी के सेवाभाव से राजा दशरथ इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उनके साथ आए मंत्री को बुलाकर कहा कि राजकुमारी के रूप, गुण और सौंदर्य ने उनका मन मोह लिया है। मंत्री ने जब उन्हें बताया कि यह कन्या रूपवती ही नहीं, शस्त्र संचालन और सारथ्य विद्या में भी निपुण है तो राजा दशरथ अभिभूत हो गए। उन्होंने वहीं तत्काल मंत्री के हाथों महाराज अश्वपति के पास स्वयं के विवाह का प्रस्ताव राजकुमारी कैकई के साथ के लिए भेजा।

राजा दशरथ के प्रस्ताव पर महाराज अश्वपति काफी चिंतन करते रहे। तब मंथरा ने उन्हें समझाया तथा महाराज दशरथ का प्रस्ताव स्वीकार करने की सलाह दी। मंथरा ने समझाया कि अयोध्या एक शक्तिशाली राज्य है और कैकय की उनसे विवाह संधि होने के कारण कैकय राज्य की प्रतिभा तो बढ़ेगी ही साथ में राजकुमारी कैकई को महाराज दशरथ जैसे शक्तिशाली एवं प्रतिभावान सम्राट पति के रूप में प्राप्त होंगे। मंथरा की सलाह मानकर महाराज अश्वपति ने महाराज दशरथ से वचन लेकर कि उनकी पुत्री का गर्भपुत्र ही अवध का भावी सम्राट होगा, धूमधाम से राजकुमारी कैकई का विवाह कर भारी मन से उन्हें विदा किया। तब मंथरा भी महारानी कैकई के साथ अयोध्या के लिए रवाना हो गयीं।

राजा दशरथ का शौर्य, पराक्रम और शस्त्रलाघव अद्भुत था। उनके बलिष्ठ कंधे, सुपुष्ट भुजाएं, चौड़ी छाती और बड़ी-बड़ी आंखें देखकर ही अनेक सूरमा कांप जाते थे। धनुष कंधे पर रखकर जब वे रथ पर चढ़ते तो विधर्मियों के दिल दहल जाते थे। देवताओं का राजा इंद्र भी उनके शौर्य और साहस का लोहा मानता था। एक बार शंबरासुर नाम के असुर से युद्ध करने के लिए राजा इंद्र ने दशरथ से सहायता मांगी। शंबरासुर एक क्रूर आक्रांता

था। उसने रणक्षेत्र में महाराज दशरथ को ललकारा। राजा दशरथ जब युद्ध के लिए जाने लगे तो मंथरा की सलाह पर महारानी कैकई के अनुरोध पर महाराज दशरथ ने महारानी को भी अपने साथ ले लिया। शस्त्र संचालन में महारानी कैकई की दक्षता और सारथ्य ज्ञान पर महाराज दशरथ को गर्व था। बड़ा ही भीषण युद्ध था वो। उस युद्ध में अत्यंत मार-काट मची थी। राजा दशरथ ने अपने तीक्ष्ण बाणों के अचूक प्रहार से अनेक असुरों को मार डाला। असुरों के कोलाहल को सुनकर शंबरासुर स्वयं राजा दशरथ के सम्मुख आ गया। उस समय महारानी कैकई रथ के पिछले भाग में राजा के समीप बैठी थी। युद्ध में जब शंबरासुर परास्त होने लगा तो उस विधर्मी ने दशरथ के सारथी को मार डाला और रथ की धुरी को काट दिया। सारथी के मरते ही तुरंत महारानी कैकई ने घोड़ों की लगाम अपने हाथ में ले ली और अपने हाथ से रथ की धुरी को संतुलित किया। रथ के स्थिर होते शंबरासुर ने राजा दशरथ को बाणवर्षा से लहुलूहान कर मूर्छित कर दिया। तब स्वयं महारानी कैकई ने तलवार हाथ में लेकर उसे पुकारा, 'रे अधम! अब तू नहीं बचेगा।' महारानी उस से युद्ध करना चाहती थीं कि राजा होश में आ गए। इस बार उन्होंने अद्भुत रण कौशल का प्रदर्शन किया। महारानी को घायल देख वे क्रोध से फुफकार उठे। उनकी आंखों में अंगारे दहकने लगे। कुपित दशरथ ने तब ऐसी बाण वर्षा की कि शंबरासुर सेना सहित रण छोड़कर भाग खड़ा हुआ। इस युद्ध में महारानी की हथेलियों में गहरी चोट लगी यहां तक कि उनकी कनिष्ठ अंगुली की हड्डी तक टूट गई।

युद्ध में महारानी की भूमिका से राजा इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उन्हें दो वर मांगने को कहा। उस समय महाराज का तन-मन महारानी के अहसान से उपकृत था। महारानी ने राजा को प्रत्युत्तर में यही कहा, 'राजन, पति सेवा से बढ़कर स्त्री के लिए कोई धर्म नहीं है। मैंने वरदान जैसा कोई काम नहीं किया। आपकी रक्षा करना मेरा धर्म था। एक क्षत्राणी के लिए इससे अधिक गौरव की बात और क्या हो सकती है? मेरा अहोभाग्य कि यह गौरव आपने मुझे दिया!' इस उत्तर से अभिभूत राजा ने कहा, 'कैकेयी! तुम्हारे दो वरदान तुम्हारे पास धरोहर रूप में सुरक्षित है। जब उचित लगे मांग लेना!'

अयोध्या महल पहुँच कर महारानी कैकई ने सर्वप्रथम मंथरा का अभिवादन किया। आज मंथरा की शिक्षा ने ही उसके पति के प्राणों की रक्षा की।

भगवान् श्री राम की इक्षा एवं अपनी धर्मपुत्री कैकई द्वारा श्री राम को दिए वचनों को कार्यान्वित करने के लिए मंथरा नाटक करने लगती हैं। जलन की अनुभूति प्रदर्शित करने लगती हैं। सभी महलों की दास दासियों के समक्ष चीख चीख कर राम के राज्याभिषेक की आलोचना करने लगती हैं। सब को सुना सुनाकर कपट की करोडो कहानियां माँ कैकई को सुनाने लगती हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता कि राम राज्याभिषेक होते ही कैकई एवं भरत कारागार में वास करेंगे और कैकई सम्राज्ञी से दासी हो जाएंगी। माँ कैकई इन बातों का अपने ऊपर प्रभाव होते दर्शाने लगती हैं। मन्थरा की सलाह पर कोप भवन में चली जाती हैं।

इधर राज सभा के कार्य समाप्ति पर सम्राट अपने महल की ओर रुख करते हैं। श्री राम के राज्याभिषेक के अपने निर्णय का समाचार सर्व प्रथम वह अपनी प्रिय रानी कैकई को देना चाहते हैं। काम की आसक्ति का प्रभाव तो देखिये कि जो समाचार सर्व प्रथम माँ कौशल्या को देना चाहिए था वहां महाराज दशरथ को वह समाचार अपनी प्रियतम रानी कैकई को देने की शीघ्रता है। माँ कैकई के महल पहुँचने पर महाराज दशरथ को उनके कोप भवन में होने का समाचार मिलता है। महाराज विचलित हो जाते हैं। देवराज इंद्र भी जिनकी भुजाओं के प्रभाव के बल से दानवों से भयमुक्त रहते हैं, वह महाराज दशरथ कामास्था के प्रभाव से कोप भवन रुपी कामदेव के बाणों से आहत हो जाते हैं। कोप भवन शीघ्रता से पहुंचते हैं और अपनी प्रिय पत्नी को येन केन प्रकारेण मनाने का प्रयास करते हैं।

अनहित तोर प्रिया केई कीन्हा। केहि दुइ सर केहि जमु चह लीन्हा।
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू, कहु केहि नृपहु निकासौं देसू।

माँ कैकई के कानों में श्री राम के शब्द गूँजने लगते हैं। इस ढलती उम्र में भी महाराज में काम और अभिमान दोनों ही कूट कूट कर भरे हैं। पत्नी को प्रसन्न करने के लिए उन्हें उचित अनुचित का भी कोई ध्यान नहीं। बिना कारण किसी को मरण, किसी राजा को कंगाल और किसी कंगाल को नृप बनाने की बात कह रहे हैं। महाराज दशरथ की इस आयु में भी यह सांसारिक प्रेम और अभिमान देखकर उन्हें उनका नरक द्वार प्रशस्त दृष्टिगोचर होता है। नहीं नहीं, मैं एक धर्मपत्नी हूँ। मेरा धर्म अपने पति को अधार्मिक प्रवर्तियों से बचाकर उन्हें धर्म की ओर ले जाना है। पुत्र राम के वचनों को चरितार्थ करते हुए इनके देवलोक के मार्ग को उज्ज्वलित करना है। हृदय में पति की भलाई परन्तु ऊपर से क्रोध दिखलाती हुई कैकई महाराज दशरथ से कठोर वचन कहने लगती हैं। महाराज आपने एक बार मुझे दो वचन देने को कहा था, आज में अपने दो वचन आपसे मांगनी चाहती हूँ। क्या मेरे दो वचन मुझे मिलेंगे?

महाराज दशरथ तो किसी भी प्रकार अपनी रानी को प्रसन्न देखना चाहते हैं।

झूठइ हमिहि दोष जनि देहू, दुइ कै चार मागि मकु वेहू।

जब माँ कैकई को पूर्ण विश्वास हो गया कि महाराज अपने वचनों से अब नहीं मुकरेंगे तो उन्होंने भगवान् श्री राम से निर्देशित दो वचन मांग लिए।

सुनहि प्राणप्रिय भावत जीका, देह एक वर भरतहिं टीका।
मांगउ दूसर वर कर जोरी, पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।
तापस वेश विशेषि उदासी, चौदह बरस रामु बनबासी।

अब महाराज सहम गए। काटो तो खून नहीं, ऐसी स्थिति में आ गए। बहुत प्रकार से कैकई को मनाने का प्रयास करने लगे। जब किसी भी तरह कैकई नहीं मानी तो प्रथम वर - भरत का राज्याभिषेक करने को मान

गए, परन्तु दूसरा वचन - राम को वनवास, यह तो उनके गले से उतरता ही नहीं था। इस दूसरे वचन को कैकई से वापस लेने की बहुत प्रार्थना करने लगे। लेकिन यही तो असली कारण था भगवान् श्री राम के जन्म लक्ष्य का। वह कैसे मानतीं? भगवान् श्री राम को दिया उनका वचन असत्य हो जाता। वह किसी भी प्रकार नहीं मानी। महाराज दशरथ गिड़गिड़ाते रहे। माँ का हृदय जन कल्याण हेतु कठोर हो गया। दशरथ जी राम राम रटने लगे। किसी प्रकार सुबह हुई। महाराज दशरथ का कैकई के प्रति मोह समाप्त हो चुका था। सुबह होते ही महाराज कौशल्या माँ के भवन चले गए। राम को वनवास हुआ, यह सर्व जगत विदित है। राम के वियोग और विरह में दशरथ जी ने राम राम, और फिर राम राम कहकर प्राण त्याग दिए।

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ, राउ गयउ सुरधाम।

इस प्रकार माँ कैकई के त्याग से, कामरूपी कैकई के मोह को त्याग कर, राम राम स्मरण करते हुए महाराज सुरलोक में वास करने चले गए।

यह सर्व विदित है कि भगवान् श्री राम ने वन जाकर अपने अवतार हेतु को चरितार्थ किया। रावण सहित सभी राक्षशों को निर्वाण दिया। माँ कैकई का त्याग प्रजा की सुख शांति एवं राम राज्य स्थापना का कारण बनी।

माँ कैकई का त्याग इतना महान था कि भगवान् श्री राम उनके सदैव कृतज्ञ रहे। हर अवसर पर वह माँ कैकई का ही सर्वप्रथम अभिवादन करते रहे।

जब भरत श्री राम को लौटा ले जाने के वन में बहुत आग्रह करते हैं और श्री राम किसी प्रकार नहीं मानते, तब भगवान् श्री राम का रहस्य जानने वाले मुनि वसिष्ठ श्री राम के संकेत से भरत को अलग ले जाकर एकान्त में

समझाते है – पुत्र ! आज मैं तुझे एक गुप्त रहस्य सुना रहा हूं। श्री राम साक्षात् नारायण हैं। पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने इनसे रावण वध के लिये प्रार्थना की थी, इसी से इन्होंने दशरथ के यहाँ पुत्ररूप से अवतार लिया है। श्री सीता जी साक्षात् योगमाया हैं। श्रीलक्ष्मण शेष के अवतार हैं। श्रीराम को रावण का वध करना है, इससे वे जरूर वन में रहेंगे। तेरी माता का इसमें कोई दोष नहीं है। यह सभी श्री राम की आज्ञा से ही हुआ है।

कैकेय्या वरदानादि यद्यन्नि ष्ठुरभाष्णम् ॥
सर्व देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयेत्कथम्।
तस्मात्त्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने ॥
(अध्यात्मरामायण २। ९। ४५ -४६)

माँ कैकई प्रथम पूज्या हैं। उनको हृदय में रख जो माँ लक्ष्मी का पूजन करते हैं उन्हें हर प्रकार से इस जीवन में धन धान्य, सुख, सम्पति, संतति और शांति प्राप्त होती है तथा मरण के बाद ब्रह्मलोक में भगवान् श्री राम स्थान देते हैं।